माण्डू के जावड़ शाह

मूल लेखक : डॉ० सी० क्राउझे
अनुवादक : डॉ० सत्यव्रत
संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

१४६८-६९ ई० में, जब मालव प्रदेश पर गयासुद्दीन खल्जी का शासन था, उसकी राजधानी मण्डुपदुर्ग (आधुनिक माण्डु) में एक भव्य उत्सव का आयोजन किया गया था। यह उद्यापन पर्व था। जैन समाज, कुछ व्रतों की पूर्णाहूति—पारणा पर अब भी ऐसा उत्सव मनाता है। इस अवसर पर धार्मिक ज्ञान, विश्वास तथा आचरण के उन्नयन के लिये समुचित उपहार दिए जाते हैं। इस उद्यापन का विशेष महत्त्व था। उस समय पवित्र जैन महिला 'कुमरी' ने खरतरगच्छीय जैन यति वाचनाचार्य 'सोमध्वज' को कल्पसूत्र की एक स्वर्णाक्षरी सचित्र प्रति भेंट की थी, जो उसने प्रचुर धन व्यय करके तैयार करवायी थी।

संवत् १५५५ में लिखित यह उत्कृष्ट हस्तप्रति आज भी उपलब्ध है। कल्पसूत्र के अर्धमागधी पाठ के अतिरिक्त इसमें अत्यन्त अलंकृत काव्य-शैली में निबद्ध ६१ संस्कृत-पद्यों की एक प्रशस्ति है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इस प्रशस्ति की रचना सोमध्वज के प्रशिष्य के शिष्य मुनि शिवसुन्दर ने उक्त संवत् में की थी और उसी वर्ष इसकी प्रतिलिपि की गयी थी।[1]

कल्प-प्रशस्ति में लेखक ने केवल उपहार का ही विस्तृत वर्णन नहीं किया है, अपितु मण्डुप के जैन-व्यापारी जसधीर के वंश के सम्पूर्ण इतिहास का भी निरूपण किया है। कल्पसूत्र की भेंटकर्त्री 'कुमरी', जसधीर की चार पत्नियों में से दूसरी थी।[2] प्रशस्तिकार ने अपना विवरण परिवार के सातवें पूर्वज से प्रारम्भ किया है, जो दिल्ली का प्रतिष्ठित व्यापारी था। यह परिवार तब तक दिल्ली में रहता रहा, जब तक इसका चतुर्थ पूर्वज माण्डू में स्थानान्तरित न हुआ। माण्डू में इस परिवार की एक लघु शाखा बस गयी थी। जसधीर इसी शाखा से सम्बन्धित था।

श्रीमाली कुल का बहकट गोत्रीय यह परिवार खरतरगच्छ का अनुयायी था। वंशपरम्परा के अनुरूप जसधीर तत्कालीन गच्छधर आचार्य जिनसमुद्रसूरि का श्रद्धालु शिष्य था। उसने 'संघपति' की स्पृहणीय उपाधि प्राप्त की थी तथा अपनी दानशीलता एवं धार्मिक विचारधारा के कारण सुविख्यात था। इसीलिये प्रशस्ति में उसकी मुक्त प्रशंसा की गयी है। यही प्रशंसा उसके उन पूर्वजों को प्राप्त हुई है, जिन्होंने अपने सत्कृत्यों के कारण विशिष्ट पद प्राप्त किये थे। अन्य पूर्वजों का प्रशस्ति में केवल नामोल्लेख है।

इन गौरवशाली पुरुषों के समुदाय में, सीधे वंशवृक्ष से कुछ हटकर, दो ऐसे व्यक्ति थे, जिनका नाम संयोगवश जावड़ था। वे दोनों माण्डू के वासी तथा समसामयिक थे।

१. **खरतरगच्छीय जावड़**—जावड़ नामधारी इन दो व्यक्तियों में से कम महत्त्वपूर्ण जावड़, जसधीर का जामाता था। उसे कुमरी की सौत झषकू की बड़ी पुत्री, सरस्वती, विवाहित थी। उसके विषय में कल्पसूत्रप्रशस्ति

---

१. इस प्रशस्ति की प्रतिलिपि मुझे श्री अगरचन्द नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुई थी।

२. कल्पप्रशस्ति, २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वह संघपति मण्डण का पुत्र था (५४)। उल्लेखों की स्वतन्त्रता से अभास होता है कि यह जावड़ अपने समकालीन लेखकों को प्रभावित नहीं कर सका । वह निश्चय ही अपने लब्ध-प्रतिष्ठ पिता की अपेक्षा कम प्रतिष्ठित था, जिसके बारे में कल्पप्रशस्ति के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से भी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है तथा जिसके प्रख्यात नाम के पीछे जावड़ एक परिशिष्ट-सा प्रतीत होता है ।

क्रमशः संवत् १५२८ तथा १५३२ में लिखित वसुदेवहिण्डी और भगवतीसूत्र की हस्तप्रतियों की पुष्पिकाओं से, जिनकी प्रतिलिपियाँ संघपति मण्डण (माण्डण) ने माण्डू के भण्डार के लिये करवायी थीं, विदित होता है कि वह श्रीमाली कुल के ठक्कुर गोत्र से सम्बन्धित तथा खरतरगच्छ का अनुयायी था । वह संघपति जयता तथा उसकी पत्नी हीमी का आत्मज था । उसने प्रतिमा-प्रतिष्ठा, देवालय-निर्माण, सघयात्रा आदि सुकृत्यों से जैन धर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रमाणित की थी तथा सत्रागारों की स्थापना आदि दान-कार्य किये थे । उसने पूर्वोक्त भण्डार के लिये समूचे सिद्धान्त (जैन धर्म के पवित्र ग्रन्थ) की प्रतिलिपि भी कराई थी। मुद्रित पुस्तकों के अभाव के उस युग में यह निःसन्देह प्रशंसनीय कार्य था । इस बात पर बल दिया गया है कि यह सब कुछ उसने ईमानदारी से अर्जित विशाल धनराशि खर्च करके सम्पन्न किया था । वसुदेवहिण्डी की पुष्पिका में उसकी पत्नी लीलादे तथा उसके पुत्रों खीमा और करण का तो उल्लेख है, किन्तु जावड़ के विषय में सर्वथा वह मौन है । भगवतीसूत्र की पुष्पिका के अनुसार उसके पुत्रों का नाम संघपति खीमराज तथा संघपति जाउ हैं । जाउ, निःसन्देह, जावड़ का नामान्तर है । जावड़ के पुत्र नीना का भी इस पुष्पिका में उल्लेख आया है ।

शिलालेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि श्रीमाली कुल के जयता के पुत्र मण्डण (अथवा माण्डण) ने जिन-मूर्तियों की स्थापना की थी तथा जिनचन्द्रसूरि से उनका अभिषेक (प्रतिष्ठा) कराया था । जिनचन्द्रसूरि खरतरगच्छ के सत्तावनवें आचार्य और इस प्रकार जिनसमुद्रसूरि के पूर्ववर्ती थे, जो, जैसा पहले कहा गया है, जसधीर के गुरु थे । संवत् १५२४ के एक शिलालेख[१] से स्पष्ट है कि उसने मण्डपदुर्ग में, उस वर्ष, श्रेयांस की प्रतिमा स्थापित की थी । इस लेख से यह भी ज्ञात है कि वह ठक्कुर गोत्र का था। जावड़ का उक्त लेख में कोई उल्लेख नहीं है, यदि झांझण जावड़ का भ्रष्ट रूप न हो । संवत् १५३३ के एक अन्य लेख[२] में माण्डण की पत्नी लीलादे तथा उसके पुत्र जावड़ के नाम आये हैं । इसी लेख में यह निर्देश भी है कि माण्डण ने सुपार्श्व की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी जिस पर प्रस्तुत लेख उत्कीर्ण है । इसमें स्थान तथा गोत्र के नाम का सर्वथा अभाव है ।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उपर्युक्त पुष्पिकाओं तथा शिलालेखों के मण्डण तथा जावड़ (जाउ) उन समनाम व्यक्तियों से अभिन्न है, जिनका उल्लेख कल्प-प्रशस्ति में हुआ है ।[३]

खरतरगच्छीय जावड़ का संक्षिप्त विवरण यहीं समाप्त होता है । वह न अपने उदार तथा दूरदर्शी पिता के पगचिह्नों पर चला, न उसने अपने विशालहृदय श्वसुर का अनुगमन किया । जहाँ तक हमें ज्ञात है, उसने ऐसा कोई कृत्य नहीं किया था जिससे उसका नामोल्लेख न्यायोचित कहा जा सकता, यदि लोग उसे उसके गौरवशाली समनाम—तपागच्छीय जावड़ से अभिन्न मानने की भूल न करते ।[४]

---

१. विनयसागर : प्रतिष्ठा-लेख-संग्रह, नं० ६५१ २. वही, नं० ७५७

३. इस मण्डण (माण्डण) को उसके समवर्ती अथवा लगभग समवर्ती समनाम व्यक्तियों, विशेषतः मन्त्री मण्डन से अभिन्न मानना भ्रामक है, यद्यपि मन्त्री मण्डन भी माण्डू के वासी तथा श्रीमाली कुल एवं खरतरगच्छ से सम्बन्धित थे । वे सोनगर-गोत्रीय बाहड़ के पुत्र थे ।

—एम० डी० देसाई : जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (बम्बई, १९३३), पृ० ६९८-७०४

४. अगरचन्द नाहटा : माण्डवगढ़ के जैन मन्दिर, मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् की पत्रिका, भाग २, पृ० ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) **तपागच्छीय जावड़**—दूसरा जावड़ जसधीर की सबसे छोटी बुआ[1] सुहगू का पुत्र था। जावड़ के पिता का नाम राजमल्ल था। कल्पसूत्रप्रशस्ति में उसके नाम का यद्यपि निर्देश मात्र है किन्तु अन्य स्रोतों से, जिन पर हम आगे विचार करेंगे, विदित होता है कि वह गौरवप्राप्त व्यक्ति था।

जावड़ तथा उसके परिवार का मुख्य इतिहासकार जैन कवि सर्वविजयगणि है, जिसकी मुनि-परम्परा तपागच्छ के पचासवें गच्छनायक आचार्य सोमसुन्दरसूरि तक पहुँचती है। वह दो संस्कृत-महाकाव्यों—आनन्दसुन्दर[2] तथा सुमतिसम्भव[3] का प्रणेता है। ये दोनों काव्य हस्तप्रतियों के रूप में सुरक्षित हैं। अभी तक इनका मुद्रण नहीं हुआ है।

आनन्दसुन्दर (अपरनाम दश-श्रावकचरित) में, जैसा दोनों शीर्षकों से संकेतित है, महावीर के दस प्रमुख श्रावकों की कथाएँ वर्णित हैं, जिनमें आनन्द सर्वप्रथम है। यह उवासगदसाओ (सप्तम अंग) पर आधारित है तथा इसमें आठ अधिकार हैं। इसकी रचना संवत् १५५१ में लिखित प्राचीनतम प्रतिलिपि से कुछ ही पूर्व हुई होगी क्योंकि इसमें जावड़ द्वारा संवत् १५४७ में कराई गयी प्रतिमा-प्रतिष्ठा की घटना का उल्लेख है तथा तपागच्छ के ५४वें गच्छाधिपति, जावड़ के गुरु, आचार्य सुमतिसाधुसूरि, जिसका स्वर्गारोहण संवत् १५५१ में हुआ था, के जीवित होने का संकेत है। अनेक छिट-पुट उल्लेखों के अतिरिक्त इसमें छठे पूर्वज के बाद से, जावड़ के परिवार का विस्तृत ऐतिहासिक वृत्त सन्निविष्ट है। सर्वविजय ने काव्य का प्रणयन जावड़ के सुझाव तथा आग्रह से किया था, अतः उसके परिवार का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रत्याशित नहीं है।

सर्वविजय के दूसरे काव्य का शीर्षक, आपाततः, सुपरिचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें जैन तीर्थंकरों, सुमति तथा सम्भव, के नाम ध्वनित हैं; किन्तु वास्तव में उनका काव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें पूर्वोक्त आचार्य सुमतिसाधुसूरि का जीवनचरित वर्णित है। काव्य में, संवत् १५४७ में, जावड़ द्वारा कराई गयी प्रतिमा-प्रतिष्ठा का वर्णन होने के कारण यह उस वर्ष (संवत् १५४७) तथा इसकी एकमात्र ज्ञात हस्तप्रति के प्रतिलिपिकाल, संवत् १५५४ के मध्य लिखा गया होगा। अन्तिम भाग के नष्ट हो जाने से यह कहना सम्भव नहीं कि काव्य में नायक के निधन का वर्णन किया गया था या नहीं। किन्तु इसके शीर्षक (सम्भव) को देखते हुए अधिक सम्भव यही है कि काव्य में यह वर्णन नहीं था। अतः काव्य-रचना की अन्तिम सीमा, संवत् १५५१ निश्चित होती है।

काव्य के आठ में से पूरे दो सर्गों में (७-८) जावड़ (नायक के प्रमुख भक्त के रूप में) का वृत्त वर्णित है। किन्तु जावड़ के पूर्वजों में से केवल उसके पितामह गोल्ह तथा पिता राजमल्ल की ही चर्चा हुई है। यह सम्भवतः इस बात का द्योतक है कि इसकी रचना आनन्दसुन्दर के बाद हुई थी, जिसमें पूर्ण वंशावली दी गयी है और कवि ने उसे यहाँ दोहराना आवश्यक नहीं समझा।

जावड़ के विषय में कुछ जानकारी, मुख्यतः उसकी सामाजिक तथा धार्मिक सेवाओं के सम्बन्ध में, शिवसुन्दर की उपर्युक्त समसामयिक कल्पसूत्रप्रशस्ति से प्राप्त होती है। जावड़ का एक उल्लेख वाचनाचार्य सोमध्वज के शिष्य खेमराज गणि अपरनाम क्षेमराज गणि की गुजराती 'माण्डवगढ़प्रवाडी' में मिलता है। उसके एक अन्य ग्रन्थ (सं० १५४६ में लिखित) के प्रामाण्य के अनुसार वह जावड़ का समकालीन था। एक अन्य स्रोत संवत् १५४१ में रचित सोमचरित

---

१. बहिन नहीं, जैसा अगरचन्द नाहटा ने 'विक्रम' १. १ में प्रकाशित अपने लेख में माना है। कल्पप्रशस्ति में स्पष्ट कहा गया है कि सुहगू जसधीर के पितामह जगसिंह की पुत्री थी।

२. इसकी एक हस्तप्रति भक्तिविजय भण्डार, आत्मानन्द सभा, भावनगर में सुरक्षित है (नं० ७०३)

३. तुलना कीजिए : भँवरलाल नाहटा "श्रीसुमतिसम्भव नामक ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धि," जैन सत्यप्रकाश, २०, २-३, पृ० ४४.

मेरे उल्लेख तथा उद्धरण एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता में सुरक्षित हस्तप्रति (७३०५) की फोटो प्रति के अनुसार हैं। यह प्रति मुझे, परम उदार तथा सदैव सहायताकर्त्ता श्री अगरचन्द नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणि का 'गुरुगुणरत्नाकर' महाकाव्य है। यह तपागच्छ के ५३वें गच्छेश आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि का जीवन चरित है। किन्तु इससे जावड़ की संघयात्रा पर ही पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त विबुधविमलशिष्य द्वारा गुजराती पद्यों में रचित 'तपागच्छ-पट्टानुक्रम—गुर्वावली छन्द' (संवत् १५७०) तथा आधुनिक 'लघुपौषालिक-गच्छपट्टावली' दो अन्य स्रोत हैं, इन दोनों से जावड़ की प्रतिमा-प्रतिष्ठा के विषय में पर्याप्त सूचना मिलती है।

वंशावली—जावड़ एक प्राचीन, अतीव सम्मानित तथा धनाढ्य परिवार का वंशज था। इसका अनुमान इस तथ्य से किया जा सकता है कि, हापराज को छोड़कर उसके पूर्वजों की शृंखला के सभी घटक व्यक्ति संघपति थे। इसका तात्पर्य है कि उन्होंने कम-से-कम एक बार संघयात्रा का आयोजन किया था। यह ऐसा काम है जिसके लिए उन दिनों असीम साहस, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा धन की आवश्यकता थी। जावड़ के तीन पूर्वज मालव-नरेशों के दरबारों से सम्बन्धित थे। हापराज 'मास्टर आफ प्रौटोकोल' के समान कोई अधिकारी था। गोल्ह राजा का प्रेम-पात्र था तथा जावड़ का पिता राजमल्ल मालवपति महिमुन्द की सभा का भूषण था।

इनमें से अधिकांश की, उनकी दानशीलता तथा पवित्रता के कारण प्रशंसा की गयी है। अन्त में राजमल्ल का प्रशस्तिगान हुआ है, जो माण्डू में गुरु लक्ष्मीसागरसूरि का ठाटदार स्वागत करने के कारण प्रख्यात है। इस आयोजन पर उसने ६०,००० टंक व्यय किये थे। इस लोकप्रिय तथा विद्वान् साधु के माण्डू में ठहरने की पुष्टि, संवत् १५१७, १५२०, १५२१ तथा १५२४ में उनके द्वारा अभिषिक्त (प्रतिष्ठित) जिन-प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों से होती है। इससे राजमल्ल के इस कार्य का समय भी लगभग निश्चित हो जाता है।

प्रशासनिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा—वंश-परम्परा के अनुरूप जावड़ को भी राजदरबार में प्रतिष्ठित पद प्राप्त था। गयासुद्दीन सदैव उसका सम्मान किया करता था। सुल्तान ने उसे उत्तम व्यवहारों की उपाधि से विभूषित तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किया था। इसीलिए उसे सुल्तान का मन्त्री कहा गया है। कभी-कभी जावड़ेन्द्र के रूप में भी उसका उल्लेख हुआ है। यह विरुद उसकी सत्ता के अतिरिक्त, लघुशालिभद्र की भाँति, उसकी असीम समृद्धि को व्यक्त करता है।

श्रीमालभूपाल[1] विरुद उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक है। यह उपाधि उसके लिए बार-बार प्रयुक्त की गयी है।

तीर्थयात्रा—जैसा उसके विशेषण संघनायक तथा नियमित उपाधि संघपति से व्यक्त है, जावड़ को अपने सम्प्रदाय में बहुत सम्मान प्राप्त था। स्पष्टतः उपरोक्त उपाधि उसे अर्बुदाचल (आबू) तथा जीरापल्ली अथवा जीरापुरी (आधुनिक जीरावल) की तीर्थयात्रा करने के पश्चात् मिली थी। ये दोनों अब भी जैनों के विख्यात तीर्थ-स्थान हैं। जावड़ की किसी अन्य तीर्थ-यात्रा का अन्य स्रोतों से पता नहीं चलता, यद्यपि वे उसके साथ जाने वाले तीर्थयात्रियों के अपार समूह तथा उसके द्वारा व्यय की गयी असीम धन-राशि का वर्णन करते-करते नहीं अघाते। कल्पप्रशस्ति के अनुसार जसधीर स्वयं भी संघयात्रा का सदस्य था। मण्डप का मन्त्रीश जाउ, अपने संघ के साथ किस प्रकार उज्जैन तथा धारा से आने वाले संघों से रतलाम में मिला, और कैसे तीनों संघ मिलकर गच्छपति आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि की वन्दना करने के लिए ईडर गये, इसका वर्णन 'गुरुगुणरत्नाकर' में सन्तोषपूर्वक किया गया है। वहाँ से आबू तथा जीरावला गये और धार्मिक उत्सव मनाते हुए, उपवास एवं दावतें करते हुए तथा सदैव आनन्दपूर्वक मुक्त हस्त दान देते हुए वे सिरोही के रास्ते मालवा लौटे। सौभाग्यवश, आबू के लुनि वसहि मन्दिर में उत्कीर्ण एक शिलालेख की सहायता से इस यात्रा का समय निश्चित किया जा सकता है। यह लेख संवत् १५३१ में, श्रीमालीकुल के संघपति राजा (राजमल्ल) तथा उसकी पत्नी सुहव के पुत्र, संघपति जावड़ की उक्त तीर्थ की यात्रा के उपलक्ष में खुदवाया गया था। यह यात्रा जावड़ ने अपनी पत्नी धनीया के साथ की थी।[2]

१. सुमतिसम्भव के सप्तम सर्ग की पुष्पिका का पाठ "श्रीमालवभूपाल" छन्द की दृष्टि से सदोष है।
२. मुनि जयन्तविजय : श्री अर्बुद—प्राचीन-जैनलेख-सन्दोह, श्रीविजयधर्म जैन ग्रन्थमाला, संख्या ५०, संवत् १९९४, पृ० १५५, सं० ३८७, पृ० ४६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु का स्वागत—अपने पिता के पगचिह्नों पर चलते हुए जावड़ ने जैसे आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि की वन्दना की थी वैसे ही वह तपागच्छ के गुरुओं का भक्त रहा। उसकी आस्था विशेष रूप से लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टधर आचार्य सुमतिसाधुसूरि के प्रति केन्द्रित थी। उसके जीवनीकार ने उसके बहु-प्रशंसित कार्यों को इन्हीं आचार्य के बुद्धिपूर्ण मार्ग-दर्शन का परिणाम माना है। सुमतिसाधु जब गुजरात में विहार कर रहे थे, जावड़ ने उन्हें माण्डू में निमन्त्रित किया तथा शानदार आयोजन से उनका अभिनन्दन किया, जिसका सविस्तार वर्णन सुमतिसम्भव में किया गया है।[1] वादकों द्वारा प्रयुक्त विविध वाद्यों, उनके तुमुल नाद, भड़कीले जलूस में चलती गजराजियों तथा भूषित घोड़ों, सेठ द्वारा वितरित मूल्यवान् परिधान तथा वेशकीमती अन्य वस्तुओं और मुसलमानों—सहित जनता के हर्ष की ओर कवि ने विशेष ध्यान आकृष्ट किया है।[2] माण्डू के वर्तमान खण्डहरों को देखकर इस चित्र की कल्पना करना सचमुच कठिन है।

द्वादशव्रतग्रहण—गुरु के सान्निध्य में जावड़ को सर्वप्रथम जो कार्य करने की प्रेरणा मिली, वह था श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करना, जिन्होंने, उसके जीवनीकार की दृष्टि में, उसे राजा श्रेणिक, सम्राट सम्प्रति, महाराज कुमारपाल तथा आम, सेठ शालिभद्र जैसे प्राचीन महान् श्रावकों की पंक्ति में आसीन कर दिया।[3]

इनमें में प्रथम पाँच व्रत अणुव्रतों के नाम से ख्यात हैं। ये मुनियों के पाँच महाव्रतों के शिथिल संक्षिप्त संस्करण हैं। जावड़ ने प्रथम दो—अहिंसा तथा सत्य-व्रतों को परम्परागत रूप में ग्रहण किया। अस्तेय को भी उसने यथावत् स्वीकार किया। केवल फलनाशक कीटाणुओं को दूर करने में वह सतर्क रहा। चतुर्थ व्रत ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत, जावड़ ने दाम्पत्य-निष्ठा का परिपालन करते हुए ३२ स्त्रियाँ रखने का अधिकार सुरक्षित रखा। निस्सन्देह, यह उसने सद्यः-निर्दिष्ट शालिभद्र के उदाहरण के अनुकरण पर किया था, जिसकी इतनी ही पत्नियाँ बताई जाती हैं। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि शालिभद्र ने उन सबको छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी। अन्य स्रोतों के अनुसार जावड़ की वस्तुतः चार धर्मपत्नियाँ थीं, जिनके नाम भी हमें ज्ञात हैं।[4] प्राचीन राजपूती परम्परा के अनुरूप, जो कुछ पीढ़ियों पूर्व राजपूत-मूलक जैन परिवारों में भी प्रचलित थी, अन्य स्त्रियाँ उसकी रखैलें रही होंगी।

अपरिग्रह नामक पंचम व्रत से, जिसके अनुसार निजी सम्पत्ति को संख्या तथा परिमाण की दृष्टि से सीमित करना होता है, जावड़ ने, निम्नोक्त क्रम में, इन वस्तुओं को अपने अधिकार में रखा—१००,००० मन अनाज, १००,००० मन घी तथा तैल, १००० हल, २००० बैल, १० भवन तथा हाट, ४ मन चाँदी, १ मन सोना, ३०० मन हीरे, १० मन साधारण धातुएँ (तांबा, पीतल आदि), २० मन प्रवाल, १००,००० मन नमक, २००० मन गुड़, २०० मन अफीम, २००० गधे, १०० गाड़ियाँ, १५०० घोड़े, ५० हाथी, १०० ऊँट, ५० खच्चर, २०,०००,००० टंक। इन अंकों से प्राचीन माण्डू के 'व्यवहारिशिरोरत्न' की समृद्धि का अंदाज किया जा सकता है।

'गुणव्रत' नामक द्वितीय व्रत-समुदाय के अन्तर्गत छठा, सातवां तथा आठवां व्रत आता है। छठे व्रत से जावड़ ने अपनी गति का अर्द्धव्यास आड़ी दिशा में २००० गव्यूति तथा ऊर्ध्व एवं अधोदिशा में क्रमशः आधा तथा २ गव्यूति तक सीमित कर दिया। सातवें व्रत के अन्तर्गत, जो दैनिक खपत तथा प्रयोग की संख्या तथा परिमाण को सीमित करता है, उसने प्रतिदिन अधिकाधिक इन वस्तुओं का प्रयोग करने का प्रण किया—चार सेर घी, पाँच सेर अनाज, पेय जल के पाँच घड़े, सौ प्रकार की सब्जियाँ, संख्या में पाँच सौ तथा तौल में एक मन फल, चार सेर सुपारी, २०० पान, स्नानीय जल के आठ कलश, परिधान के सात जोड़े तथा इसी प्रकार सीमित अन्य वस्तुएँ, जिनकी सूची बहुत लम्बी है। आठवें व्रत के अनुसार, जो ऐसी वस्तुओं तथा कार्यों की सीमा निर्धारित करता है जिनसे प्राणियों को अनावश्यक

---

१. सुमतिसम्भव, ७, २६-३३. २. वही, ७. २८. ३. वही, ७. २१.
४. आनन्दसुन्दर, पृ० १७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुविधा हो, जावड़ ने उबालकर कृमिरहित किये गये जल का प्रयोग करने, थोड़े-से वस्त्रों को रंगाने, जुआ न खेलने, कोतवाल, जेल-निरीक्षक, आदि पद स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की।

द्वादश श्रावक-व्रतों में से अन्तिम चार (९-१२) शिक्षाव्रत कहलाते हैं। नवाँ व्रत निश्चित समय पर परम्परागत सामायिक, धार्मिक अनुष्ठान करने का आदेश देता है। दसवाँ व्रत, पहले व्रतों के अन्तर्गत सामान्यतः वर्णित कार्यकलापों को और सीमित करता है। ग्यारहवें के अनुसार पौषध अनिवार्य है। बारहवाँ व्रत निश्चित समय पर निश्चित धन खर्च करके दान-कार्य, आतिथ्य तथा धार्मिक अनुष्ठानों को करने का आदेश देता है।

जावड़ ने जिन प्रतिबन्धों को स्वयं स्वीकृत किया था तथा जो प्रतिज्ञाएँ कीं, उनका सूक्ष्म वर्णन उसके जीवनीकार ने किया है। वह इस आदर्श श्रावक का चित्र संसार के समक्ष प्रस्तुत करने को उत्सुक था, जो अपने सम्प्रदाय के अनुयायियों में श्रेष्ठ था तथा जिसके धर्म ने उसे इस आत्म-संयम के पालन के लिए प्रेरित किया था।

जावड़ ने अपने प्रणों, विशेषतः बारहवें व्रत के अन्तर्गत किये गये प्रणों, का निष्ठापूर्वक पालन किया। इसका अनुमान उसके द्वारा प्रत्येक उपयुक्त अवसर पर दिये गये दान, उसके जीवनीकार की इस दृढ़ उक्ति से कि 'उसने समूची पृथ्वी को सत्रागार बना दिया'[1], जलचरों की रक्षा के लिए माण्डू की समस्त नदियों, झीलों तथा कूपों को वस्त्र से बुद्धिपूर्वक ढकवाने के वर्णन तथा उसके द्वारा करायी गयी जिन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा[2] से सहज ही किया जा सकता है।

मूर्ति-प्रतिष्ठा—जावड़ ने इन प्रतिमाओं की स्थापना एक शानदार सामूहिक आयोजन में, संवत् १५४७ में, माण्डू में करायी थी और इनका अभिषेक उसके गुरु आचार्य सुमितसाधु ने किया था। वे संख्या में १०४ थीं—अतीत के चौबीस तीर्थंकरों की एक-एक, भविष्य के चौबीस तीर्थंकरों की एक-एक, वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों की एक-एक उक्त प्रति चौबीस तीर्थंकरों के तीन सामूहिक मूर्तिपट्ट, बीस विहरमाण का एक सामूहिक मूर्तिपट्ट तथा ६ पंच-तीर्थियाँ। तेईस सेर[3] की एक चाँदी की मूर्ति तथा ग्यारह सेर की एक स्वर्णप्रतिमा[4] को छोड़कर शेष सभी मूर्तियाँ पीतल की बनी हुई थीं। उन्हें हीरक-खचित छत्रों तथा बहुमूल्य आभूषणों से सजाया गया था। यहाँ तक कि क्षेमराज ने पूर्वोक्त चैत्यप्रवाड़ी में जावड़ की चाँदी, सोने तथा मणियों की जिन-प्रतिमाओं की प्रशंसा करते हुए कहा है कि वे यात्रियों के देखने योग्य "अभिराम वस्तुएँ" हैं। कल्पसूत्रप्रशस्ति में भी जावड़ के वर्णन के प्रसंग में उनका विशेष उल्लेख किया गया है।[5] मूर्ति-स्थापना के उपलक्ष में आयोजित उत्सवों, जावड़ द्वारा दिये गये उपहारों, उसके द्वारा भेंटी गयी शानदार सामग्री तथा भारत के कोने-कोने से आये संघों का सूक्ष्म वर्णन सुमितसम्भव के २३ पद्यों में, सम्भवतः यह दिखाने के लिए कि ऐसे महत्त्वपूर्ण उत्सव का आयोजन किस आदर्श रूप में किया जाना चाहिए, किया गया है। विबुधविमलशिष्य के १७ पद्यों में भी इस घटना का वर्णन है। उसमें अतिथियों को दी गयी भोजन-सामग्री तक का वर्णन किया गया है। उसके अनुसार प्रतिष्ठा-समारोह पर जावड़ के पन्द्रह लाख रुपये खर्च हुए थे।

मन्दिर—जावड़ के इस असीम औदार्य के कारण उसके आधुनिक प्रशंसकों का कथन है कि उसने माण्डू में ऋषभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर, इन पाँच तीर्थंकरों के विशाल मन्दिरों का भी निर्माण किया

१. विश्वम्भरा·······श्रीजावडेन·······सत्रगारमिव व्यधाप्यत। —आनन्दसुन्दर, पृ० २४.
२. सुमतिसम्भव, ८. ३-७.
३. २२ सेर नहीं, जैसा लेखक एक दूसरे का अन्धानुकरण करते हुए कहते चले आये हैं। देखिये, सुमतिसम्भव, ८।६—रौप्यी त्रयोविंशतिसेरिकैका।
४. हैमी च सैकादशसेरसत्का। —सुमतिसम्भव, ८।६
५. रूप्यस्वर्णमषीमयानि भगवद्बिम्बानि योऽकारयत्। —कल्पप्रशस्ति, ४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था।[1] इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। यह अनुमान आनन्दसुन्दर (१।५) के आधार पर अन्यायपूर्वक किया गया प्रतीत होता है, जिसके मंगलाचरण में उक्त तीर्थकरों की वन्दना तथा उनके आशीर्वाद की आकांक्षा की गयी है।

मण्डपद्रंगश्रृंगाराः पञ्चाप्येते जिनेश्वराः।
शास्त्रादौ जावडेन्द्रस्य प्रसन्नाः सन्तु सन्ततम् ॥ ६ ॥

कवि ने इन पाँच जिनों को ही क्यों चुना है, यह तो उसे ही ज्ञात है। महावीर को इनमें शामिल करना सम्भवतः इसलिए उचित समझा गया है कि काव्य के सभी नायक उनके उपासक थे। किन्तु इस पद्य से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाला जा सकता कि उक्त तीर्थकरों के मन्दिर माण्डवगढ़ के प्रमुख देवायतन थे। चैत्यप्रवाड़ी में क्षेमराजगणि ने माण्डू तथा उसके आस-पास के प्रतिनिधि तीर्थस्थलों की यात्रा का विवरण देते हुए निकटवर्ती तारापुर, धार, होशंगाबाद, (ये सब सम्भवतः माण्डू के सुल्तान के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत थे[2], इसीलिए प्रवाड़ी में इन्हें शामिल किया गया है) आदि स्थानों के अतिरिक्त खास माण्डू के पार्श्व, सुपार्श्व, शान्ति, सम्भव तथा आदिनाथ के पाँच मन्दिरों का नामोल्लेख तथा वर्णन किया है। उसके साक्ष्य से यह सहज माना जा सकता है कि उसके द्वारा निर्दिष्ट पाँच मन्दिर उस समय खास माण्डू के मुख्य देवायतन थे।

माण्डू के पार्श्व तथा सुपार्श्व मन्दिरों की प्रतिनिधि प्रकृति की पुष्टि समवर्ती कल्पसूत्रप्रशस्ति से होती है।

श्रीमन्मण्डपमेरुभूधरधरास्कन्धे निबद्धस्थिती।
श्रीमत्पार्श्वसुपार्श्वनिर्जरतरू स्यातां सतां श्रेयसे ॥ १ ॥

इसके अतिरिक्त प्रत्येक जैन जानता है कि विशेषकर सुपार्श्व सदैव माण्डू के अधिष्ठाता देव माने जाते रहे हैं। यह गुजराती कवि ऋषभदास के बहुशः-उद्धृत पद्य से स्पष्ट है—

माडवगढनो राजियो नामे देव सुपास।
'ऋषभ' कहे जिन समरतां पहोंचे मननी आस ॥ ५ ॥

माण्डू के जैनों के देवता के रूप में सुपार्श्व का उल्लेख रत्नमन्दिरगणि का उपदेश तरंगिणी[3] (पृ० १३५), खेमाकृत वृद्धचैत्यवन्दन[4], शीलविजय तथा सुभागविजय की तीर्थमालाओं[5] में भी हुआ है। ये सभी (अंतकीट) अठारहवीं शताब्दी की कृतियाँ हैं।

साहित्य तथा शिलालेखों में कहीं भी इस बात का संकेत तक नहीं है कि जावड़ ने उक्त पाँच मन्दिरों अथवा उनमें से किसी एक का या अन्य किसी जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था। दूसरी ओर, यह निश्चित है कि जावड़ के समय में, माण्डू में, जैन मन्दिर पर्याप्त संख्या में विद्यमान थे, यद्यपि यह कहना कठिन है कि उन समस्त सात-सौ मन्दिरों का क्या हुआ, जिनका उल्लेख मुनि जयानन्द ने अपनी 'नेमाड़ प्रवास-गीतिका'[6] में किया है तथा जो, संवत् १४२७ में, उनकी यात्रा के समय वहाँ अवस्थित थे, जब माण्डू की जनसंख्या ३००,००० थी। अस्तु, यदि हम माण्डू के जैन मन्दिरों के प्राचीन इतिहास की खोज करने लगें तो हम विषय से भटक जायेंगे क्योंकि उसके अन्तर्गत हमें पेथड़ के प्रसिद्ध निर्माणकार्य पर दृष्टिपात करना होगा। यहाँ यह कहना ही पर्याप्त होगा कि जावड़ के समय में कम-से-

---

१. मुनि यतीन्द्रविजय : यतीन्द्रविहारदिग्दर्शन, भाग ४, सं० १९९३ पृ० २०३, अगरचन्द नाहटा ने इसे दोहराया है, मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् की पत्रिका, नं० २, पृ० ८०.

२. चैत्यप्रवाड़ी के पाठ से बिल्कुल स्पष्ट है कि तीर्थयात्रा के मार्ग के २२ मन्दिरों में से केवल पाँच माण्डू में स्थित थे, यद्यपि अगरचन्द नाहटा इन सब को माण्डू में स्थित मानते हैं। देखिये—मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् की पत्रिका, पूर्वोक्त।

३. बनारस से प्रकाशित, सं० १५२०, वीर संवत् २४३७

४. सं० १६१६ (?) द्रष्टव्य—क्राउझे, त्रण प्राचीन गुजराती कृतिओ, अमदाबाद, १९५१, पृ० २५-२६

५. सं० १७४६ तथा १७५० : देखिए—विजयधर्मसूरि, प्राचीन तीर्थमाला संग्रह, संवत् १९७८, पृ० १०१ तथा ७३

६. मुनि न्यायविजयकृत—जैन तीर्थोनो इतिहास, अमदाबाद, १९४९, पृ० ४११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम १०४ मन्दिर निःस्सन्देह विद्यमान थे और उनमें से प्रत्येक में उसने एक-एक प्रतिमा की स्थापना की थी (सुमति-सम्भव, ८।१४)।

स्फुरन्त्यत्र देवालयास्तुंशृंगाः शतं ते चतुर्भिः समं चित्रचंगाः।
कसत्कोरणीभिर्लसत्तोरणश्रीधरः सिन्धुरा एव घण्टाघटाभिः ॥

यह विवरण विबुधविमलशिष्य से मेल खाता है।

अभिनव देवभुवन देवाला, शत उपरि च्यारइ चउसाला।
कणय, रजत, पीतलमय कारीय, बिंब प्रतिष्ठा जग साधारीश ॥ ७५ ॥

इससे अनुमान किया जा सकता है कि जावड़ के समय में जैन संस्कृति किस भव्यता तथा गौरव को प्राप्त कर चुकी थी। हम यह जानने को उत्सुक हैं कि श्रद्धालु कवियों द्वारा मुखरस्वर में प्रशंसित इस गौरव का अब क्या शेष रहा है ? क्या कवियों के अलंकृत शब्द ही उसकी एकमात्र साक्षी है ?

शिलालेखीय प्रामाण्य—भाग्यवश कुछ सलेख मूर्तियाँ उस सर्वव्यापी विध्वंस से बच गयी हैं, जिसने 'आनन्द-नगर' माण्डू को बियाबान बना दिया है, जिसमें आज मुसलमानों की भयोत्पादक कबरें ही स्थित हैं। पवित्र जैन लोग समय रहते उन मूल्यवान बिम्बों को अन्य सुरक्षित स्थानों पर ले गये थे तथा माण्डू से दूर मन्दिरों में स्थापित कर दिया गया था जहाँ अब भी उनकी पूजा होती है।

जावड़ द्वारा प्रतिष्ठापित १०४ बिम्बों तथा मूर्तिपट्टों में से, अतीत के जिनों के तीन बिम्ब—अनन्तवीर्य, स्वयम्प्रभ, तथा पद्मनाभ; वर्तमान के तीर्थंकरों की दो मूर्तियाँ—अभिनन्दन तथा नेमिनाथ, विहरमाण जिनों की एक प्रतिमा—विशालनाथ तथा तीनों पंचतीर्थियों—कुन्थु, शान्ति तथा पार्श्व, कुल मिलाकर ये नौ बिम्ब अभी तक सुरक्षित हैं। कुछ स्पष्टतः भ्रष्ट पाठों को शुद्ध करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि उन सब में स्थान-नाम, मण्डप, सुमतिसम्भव (७।८) में निर्दिष्ट प्रतिष्ठा-तिथि-माघशुक्लात्रयोदशी, संवत् १५४७, प्रतिष्ठाता श्रीमालवंशीय जावड़ का नाम, बहुधा उसकी पत्नियों के नाम, पत्नी सहित उसके पुत्र हीरा, उसके दत्तक सम्बन्धी लाला, हापराज के सिवाय पत्नियों सहित उसके समस्त पूर्वजों तथा राजमल्ल के अग्रज मेधा तथा बहिन शानी का समुचित उल्लेख हुआ है। ये सब किसी-न-किसी साहित्य स्रोत से भी ज्ञात हैं। शिलालेख साहित्यिक स्रोतों से, तथा आपस में, इस बात पर भी सहमत हैं कि जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा तपागच्छीय आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टधर आचार्य सुमतिसाधुसूरि ने की थी तथा इन १०४ बिम्बों को एक-साथ स्थापित किया गया था (केवल एक स्रोत में ऐसा वर्णन नहीं है)।

इस प्रकार जिस गणितीय नाप-जोख से साहित्यिक स्रोतों की उक्तियों तथा अंकों की पुष्टि शिलालेखों के प्रामाण्य से हुई है, उससे बहु निन्दित जैन-साहित्य की ऐतिहासिक उपयोगिता का पक्ष-पोषण होता है। शोधक के लिये उस स्थिति में भी इस पर विश्वास करना न्यायोचित होगा, जब इसके समर्थन में कोई शिलालेख सूत्र प्राप्त न हो। हाँ, इससे पूर्व यह आवश्यक है कि ग्रन्थों को भाषावैज्ञानिक सत्यता से समझा जाए तथा सत्य—केवल सत्य को ग्रहण करने का निष्पक्ष प्रयास किया जाए। अन्यथा अर्द्ध-इतिहास का निर्माण हो जाता है, जैसा प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय—जावड़—के बारे में हुआ है, जिसे समस्त प्रमाणों के विपरीत, वस्तुतः उनके अभाव में, माण्डू को मन्दिरों से अलंकृत करने, कल्पसूत्र की स्वर्णाक्षरी प्रति लिखवाने, प्रस्तर-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाने तथा खरतरगच्छ से सम्बन्धित होने का श्रेय पूर्ण निष्ठा से दिया गया है।

आशा है, यह संक्षिप्त अध्ययन जैन सांस्कृतिक इतिहास के एक अध्याय का सूक्ष्म किन्तु तथ्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। यह यद्यपि माण्डू की तंग सीमाओं में बद्ध है पर इसे तत्कालीन समूचे भारत का प्रतिनिधि माना जा सकता है क्योंकि जैन धर्म अपने सतत विहारशील, उपदेशदाता तथा बहुमानित साधुओं के कारण कभी भी भौगोलिक परिसीमाओं में बन्दी नहीं रहा है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org